इकाई 6 याज्ञवल्क्यस्मृति (व्यवहाराध्याय)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 धर्मसूत्र एवं स्मृति ग्रंथ

6.3 याज्ञवल्क्य स्मृति के व्याख्याकार

6.4 व्यवहाराध्याय के 25 प्रकरणों में वर्णित विषयों का संक्षिप्त परिचय

6.5 सारांश

6.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

6.7 अभ्यास हेतु प्रश्नों के उत्तर

6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य होंगे–

- वेदाङ्ग के एक अंङ्ग कल्प के अंतर्गत धर्म सूत्र का ज्ञान प्राप्त करना;
- धर्मसूत्र क्या है और स्मृति ग्रंथ किसे कहते हैं इसे जानना;
- प्रमुख स्मृति ग्रंथों के विषय वस्तु से परिचय होना;
- याज्ञवल्क्य स्मृति के विषय वस्तु से परिचित होना;
- स्मृतियों का भारतीय संस्कृति में क्या महत्त्व है उसका ज्ञान प्राप्त करना;
- स्मृति ग्रंथ क्या तात्कालिक समाज के स्वीकृत नियम थें इस तथ्य पर आधुनिक सांविधानिक व्यवस्था के दृष्टिकोण से विचार करना; और
- स्मृति ग्रंथों में वर्णित नियमों की आधुनिक युग में क्या उपयोगिता है, इस तथ्य पर भी इस इकाई में विचार किया जाएगा।

6.1 प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परम्परा के प्राचीनतम निधि वेदों के अर्थ को यथार्थ रूप में समझने के लिए वेदांग की रचना हुई। पाणिनीय शिक्षा ग्रंथ में षड् वेदांङ्गों का उल्लेख है–

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्त श्रोत्रमुच्यते।।

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। (पाणिनीय शिक्षा श्लोक 41–42)

अर्थात छंद, कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा एवं व्याकरण का ज्ञान वेदार्थ ज्ञान हेतु आवश्यक है। इनमें से भी कल्प के पुनः चार भेद हैं– श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र तथा शुल्वसूत्र। इन सूत्र साहित्य का संबंध वेदों से था। श्रौतसूत्र का सम्बन्ध यज्ञों के संपादन से है, वहीं गृह्यसूत्र में गृहस्थ जीवन से सम्बंधित अनुष्ठान संस्कार, पञ्चमहायज्ञ (ब्राह्मज्ञय, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ) इत्यादि विषयों का वर्णन है। शुल्वसूत्र में यज्ञवेदिका के निर्माण की विधियाँ वर्णित है। यहाँ ध्यान देने योग्य तथ्य यह हैं कि आज आपलोग जिस पाइथागोरस प्रमेय (थ्योरम) को पढ़ते हैं वह वस्तुतः शुल्वसूत्र में वर्णित है। धर्मसूत्र में समाज की व्यवस्था को सुचारू रूप से चलने हेतु निर्देश हैं। यहाँ राजा के कर्त्तव्य, सामाजिक जीवन में नियम, विधि (करणीय कार्य), निषेध (अकरणीय कार्य) आचार्य–व्यवहार, दण्ड विधान, प्रायश्चित कर्म आदि का विस्तार से वर्णन है। छात्रों आपको यहाँ धर्मसूत्र में प्रयुक्त 'धर्म शब्द' के अर्थ को समझना आवश्यक है। आज धर्म शब्द से जो अर्थ समझा जा रहा है, वह प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में नहीं था। धर्म का अर्थ नियम का पालन करना है। सभी वैदिक शाखाओं के धर्मसूत्र कदाचित् रहे होंगे, परन्तु सम्प्रति बौधायन, आपस्तम्ब, गौतम, हिरण्यकेशी तथा वशिष्ठ धर्मसूत्र प्राप्त होते हैं। गौतम धर्मसूत्र को प्रायः सभी विद्वान प्राचीनतम धर्मसूत्र स्वीकार करते हैं और इसका काल 600 ई. पू. स्वीकार करते हैं। धर्मसूत्र साहित्य से ही स्मृति साहित्य का विकास हुआ। मनु ने मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से वेदों को धर्म का मूल माना है।

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। (मनुस्मृति)

वेद के साथ–साथ स्मृति को भी धर्म का लक्षण कहा है–

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षात् धर्मस्य लक्षणम्।। (मनुस्मृति 2/12)

आचार्य गौतम ने भी अपने ग्रन्थ में इसी तथ्य को वर्णित किया है–

अर्थातो धर्मजिज्ञासा।
वेदो धर्ममूलम्।
तद्वदां च स्मृतिशीले। (गौतमधर्म सूत्र 1.1.1–2)

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार वेद धर्म का मूल है और जो धर्मज्ञ हैं, जो वेदों को जानते हैं, उनका मत ही धर्म प्रमाण है। उसी धर्म प्रमाण से स्मृति ग्रंथ का विकास हुआ। धर्मसूत्र एवं स्मृति ग्रंथ के स्वरूप को हम विस्तार से अगली इकाई में समझने का प्रयास करेंगे।

6.2 धर्मसूत्र एवं स्मृति ग्रंथ

धर्म से चित्त की शुद्धि होती है, अतः धर्म की व्युत्पत्ति इस भाव को व्यक्त करता है। 'धर्म' शब्द 'घृञ्' धारणे धातु के आगे 'मन्' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। इसकी व्युत्पत्ति तीन प्रकार से हो सकती है

ध्रियते लोकः अनेन' इति।
'धरति धारयति वा लोकम्' इति।
ध्रियते यः सः धर्मः इति।

पहला– जिससे लोक धारण किया जाय, वह धर्म हैं।

दूसरा– जो लोक को धारण करे वह धर्म है।

तीसरा– जो दूसरों से धारण किया जाए वह धर्म है।

महाभारतकार व्यास धर्म का लक्षण इस प्रकार करते हैं–

'धारणाद्धर्ममित्याहुधर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारणासंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।। (कर्णपर्वः 69–58)

धारण करने से लोग इसे धर्म कहते हैं। धर्म प्रजा को धारण करता है। जो धारण के साथ रहे वह धर्म है। इससे स्पष्ट है कि 'धर्म' शब्द बहुत व्यापक है। अमरकोषकार ने भी 'धर्म' शब्द के अनेक अर्थ बताए है–

सुकृत या पुण्य,

वैदिकविधि यागादि

यमराज

न्याय

स्वभाव

आचार

सोमरस पीने वाला

तथापि व्याकरण की दृष्टि से धर्म शब्द का अर्थ तो धारण करना ही होता है। निरुक्त में 'धर्म' शब्द का अर्थ नियम बताया है। दोनों को दृष्टिगत करते हुए धर्म शब्द का यही अर्थ प्रतीत होता है कि जिस नियम ने समस्त विश्व को धारण कर रखा है वही 'धर्म' है।

अब देखें कि वह कौन सा नियम सूत्र है, जिसने इस विश्व को धारण कर रखा है, और किन नियमों के अनुसार चलने से सुख–शांति–संतोष आदि का लाभ होता है। 'धनाद्धर्म ततः सुखम्' की उक्ति तो सर्वत्र प्रसिद्ध ही है। इह लौकिक और पारलौकिक भेद से सुख भी दो प्रकार का है। अतः कहना होगा कि जिससे दोनों प्रकार के सुखों की प्राप्ति हो सके वही धर्म है। सभी लोग सुख की प्राप्ति के लिये ही प्रयत्नशील रहते हैं। अतएव वैशेषिक दर्शन के रचयिता महर्षि कणाद ने धर्म का यह लक्षण किया–

यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः

जिससे इह लोक में उन्नति और परलोक में कल्याण या मोक्ष की प्राप्ति हो वह धर्म है। श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है–

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः (भागवत 6–1–44)

वेद ने जिसका विधान किया हो वह धर्म और उसके विपरीत अधर्म है। मीमांसासूत्रकार महर्षि जैमिनि, धर्म का लक्षण कहते हैं–

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।

वेद के विधानानुसार अनुष्ठेय कर्म ही 'धर्म' है। सम्राट मनु अपने संविधान अर्थात् मनुस्मृति में धर्म का लक्षण बताते हैं–

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्।। (मनुस्मृति 2–12)

वेद, स्मृति, सदाचार और अपनी आत्मा की प्रसन्नता– ये चारो, धर्म के परिचायक हैं।

श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं यत् स धर्मः प्रकीर्तितः

वेद तथा धर्मशास्त्र में जो बताया गया है उसे धर्म कहते हैं।

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्थन्हि मानवः।
इति कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानूत्तमं सुखम्।। (मनुस्मृति 2–9)

श्रुति और स्मृति के द्वारा प्रतिपादित धर्म का अनुष्ठान करने वाला मनुष्य इस लोक में यश को पाता है और मृत्यु के पश्चात् परलोक में उत्तम सुख को पाता है।

आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एवं च।
तस्मादिस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः।। (मनुस्मृति 1/108)

श्रुति एवं स्मृति प्रतिपादित सदाचार, श्रेष्ठ धर्म है, अतः आत्मज्ञ विद्वान सदैव सदाचार से युक्त रहे। डॉक्टर पांडुरंङ्ग वामन काणे ने अपनी ग्रंथ धर्मशास्त्र का इतिहास में धर्म सूत्र के ग्रंथों पर विस्तार से विवेचन किया है। आरम्भ में बहुत से धर्मसूत्र कल्पसूत्र के अंग थे और उनका अध्ययन स्पष्ट रूप से शाखाओं में हुआ करता था। कुछ विद्यमान धर्मसूत्रों से पता चलता है कि उनके अपने शाखाओं के गृह्यसूत्र में भी रहे होंगे। सभी शाखाओं के धर्म सूत्र आज उपलब्ध नहीं है। आश्वलायन एवं गृह्यसूत्र सूत्रों का कोई धर्मसूत्र नहीं है, यही बात मानव, श्रौत एवं गृह्यसूत्रों तथा शांखायन, श्रौत एवं गृह्यसूत्रों के साथ पाई जाती है अर्थात् इसके धर्मसूत्र नहीं है किंतु आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी तथा बौधायन शाखाओं में कल्प परंपरा की संपूर्णता पाई जाती है अर्थात् उनके तीनों श्रौत, गृह्य एवं धर्म सूत्र है। कुमारिलभट्ट के तंत्रवार्तिक से एक मनोहर बात का पता चलता है। उसका कहना है कि गौतम धर्मसूत्र तथा गोभिल गृह्यसूत्र का अध्ययन सामवेदी लोग करते थे, वसिष्ठ धर्मसूत्र का ऋग्वेदी लोग, शंख लिखित धर्मसूत्र का वाजसनेयी संहिता के अनुयायी गण तथा आपस्तम्ब एवं बौधायन के सूत्रों का अध्ययन तैत्तिरीय शाखा के अनुयायी करते थे। जैमिनी की व्याख्या में तंत्रवार्तिक ने एक सिद्धांत सा मान लिया है कि सभी आर्यों के लिए सभी धर्मसूत्र तथा गृह्यसूत्र प्रमाण है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आरंभ में सभी चरणों में धर्मसूत्र नहीं थे किंतु कालांतर में कुछ चरणों ने कुछ धर्मसूत्रों को अपना लिया। धर्मसूत्रों का संबंध आर्यजाति के सदस्यों के आचार नियमों से था अतः कालांतर में धर्मसूत्र सभी शाखाओं के लिए प्रमाण स्वरूप मान्य हो गया।

विषय–वस्तुओं एवं प्रकरणों में धर्मसूत्रों का गृह्यसूत्रों से गहरा सम्बन्ध था। अधिकतर गृह्यसूत्रों के विषय हैं– पूत गृहाग्नि, गृहयज्ञ–विभाजन, प्रातः–सायं की पूजा, नव एवं पूर्ण चन्द्र की पूजा, पके भोज का हवन, वार्षिक यज्ञ विवाह, पुंसवन, जातकर्म, उपनयन एवं अन्य संस्कार, छात्रों, स्नातकों एवं छुट्टियों के नियम, श्राद्ध–कर्म, मधुपक्र। गृह्यसूत्रों का सम्बन्ध अधिकांश घरेलू जीवन की चर्याओं से है, वे मनुष्य के आचारों,

अविकारों, कर्त्तव्यों और उत्तर–दायित्वों की ओर बहुत ही कम ध्यान देते हैं, अर्थात् इन बातों के नियमों से उनका सम्बन्ध है। इसी प्रकार धर्मसूत्रों में भी उपर्युक्त कुछ विषय–वस्तुओं या प्रकरणों के विषय में नियम पाये जाते हैं, तथा विवाह, संस्कारों, विद्यार्थियों, सनातनों, श्राद्ध एवं मधुपक्र के विषय में। धर्मसूत्रों में गृह्मजीवन के क्रिया–संस्कारों के विषय में चर्चा भी पायी जाती है, और वह भी बहुत कम, क्योंकि उनका विषय बहुत विस्तृत होता है। धर्मसूत्रों का मूल ध्येय है आचार, विधि–नियम (कानून) एवं क्रिया–संस्कारों की विधिवत चर्चा करना।

कुछ उपलब्ध धर्मसूत्र ग्रंथों का वर्णन आपके ज्ञान हेतु निम्नलिखित है–

1. **गौतम का धर्मसूत्र–** यह धर्मसूत्र सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है। इसका संबंध सामवेद से है। गोतम धर्मसूत्र गद्य में रचित है जिनमें कुल 28 अध्याय हैं। गौतम धर्मसूत्र की विषय सूची बहुत ही संक्षेप में इस प्रकार है–

   धर्म के उपादान, मूल वस्तुओं की व्याख्या के नियम, चारों वर्णों के उपनयन का काल प्रत्येक वर्ण के लिए उचित मेखला (करघनी) मृगचर्म, परिवान एवं दण्ड, शौच एवं आचमन के नियम, गुरु के पास पहुँचने की विधि। यज्ञोपवीत विहीन व्यक्तियों के बारे में नियम, ब्रह्मचारी के नियम, छात्रों का निमंत्रण, अध्ययन काल। चारों आश्रम, ब्रह्मचारी, भिक्षु एवं वैस्वासन के कर्तव्य। गृहस्थ के नियम, विवाह, विवाह के समय अवस्था, विवाह के आठों प्रकार, उपजातियाँ। विवाहोपरांत संभोग के नियम, प्रतिदिन के पंचयज्ञ, दोनों के पुरस्कार, मधुपक्र, कतिपय जातियों के अतिथियों के सम्मान करने की विधि। माता–पिता, नातेदारों (स्त्री एवं पुरुष) एवं गुरुओं को सम्मान देने के नियम, मार्ग के नियम। ब्राह्मण की वृत्तियों के बारे में नियम, विपत्ति में उसकी वृत्तियाँ, वह वस्तु जिन्हें न तो ब्राह्मण बेच सकता है न क्रय कर सकता है। 40 संस्कार तथा 8 अध्यात्मिक गुण (यथा दया, क्षमा, आदि) स्नातक तथा गृहस्थ के आचरण जातियों के विलक्षण कर्त्तव्य, राजा के उत्तरदायित्व, कर, स्वामित्व के उत्पादन, कोप संपत्ति, नाबालिग के धन की अभिभावकता।

   राजधर्म, राजा के पुरोहित के गुण। अपमान लेख, गाली, आक्रमण, चोट, बलात्कार, कई जातियों के लोगों की चोरी के लिए दण्ड, ऋण देने, सूदखोरी, विपरीति संप्राप्ति, दण्ड के विषय में ब्राह्मणों के विशेषाधिकार, ऋण का भुगतान, जमा। साक्षियों के विषय में नियम, मिथ्याचार का प्रतिकार। जन्म–मरण के समय अपवित्रता (अशीन) के नियम। पांचों प्रकार के श्राद्ध, श्राद्ध के समय ने बुलाए जाने योग्य व्यक्ति। उपाकर्म, वर्ष में वेदाध्ययन का काल, उसके लिए छुट्टियां एवं अवसर। ब्राह्मण तथा अन्यजातियों के भोजन के विषय में नियम। नारियों के कर्तव्य, नियोग एवं इसकी दशाएं, नियोग से उत्पन्न पुत्र में चर्चा।

   प्रायश्चित के कारण एवं अवसर, पापमोचन की पाँचें बातें (जप, तप, होम, उपवास एवं दान) पवित्र करने के लिए वैदिक मंत्र, जप करने वाले के लिए पूत भोजन, तप एवं दान के विभिन्न प्रकार, जप के लिए उचित स्थान, काल आदि प्रायश्चित न करने वोले व्यक्ति का परित्याग एवं उसके लिए नियम, पापियों की श्रेणियाँ, महापातक, उपपातक आदि। ब्रह्महत्या, बलात्कार, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र गाय या किसी अन्य पशु की हत्या से उत्पन्न पापों के लिए प्रायश्चित। मदिरा तथा अन्य

बुरी वस्तुओं के पान, व्यभिचार और स्वाभाविक अपराधी तथा ब्रह्मचारी द्वारा किए गए बहुत प्रकार के उल्लंघन के लिए प्रायश्चित।

महापातक एवं उपपातक के लिए गुप्त प्रायश्चित कृच्छ् एवं अतिकृच्छ नामक व्रत चान्द्रायण नामक व्रत, संपति–विभाजन, स्त्रीधन, पुनः सन्धि, द्वादश प्रकार के पुत्र, वसीयत आदि।

2. बोधायन धर्मसूत्र

बोधायन कृष्ण यजुर्वेद के आचार्य थे। यह धर्मसूत्र पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं होता है।

उपर्युक्त दोनों धर्मसूत्रों का यहाँ वर्णन के उपरान्त अन्य धर्मसूत्रों का यहाँ नामोल्लेख किया जा रहा है। इनके विषय–वस्तु लगभग समान ही है। आप इसका विस्तृत अध्ययन डॉक्टर पांण्डुरङ्ग वामन काणे के ग्रंथ से प्राप्त कर सकते हैं।

3. आपस्तम्ब धर्मसूत्र
4. हिरण्यकेशि धर्मसूत्र
5. वशिष्ठ धर्मसूत्र
6. विष्णु धर्मसूत्र
7. हारीत धर्मसूत्र
8. शंख धर्मसूत्र

'स्मृति' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। एक अर्थ में यह वेद वाङ्मय से इतर ग्रन्थों यथा पाणिनि के व्याकरण, श्रौत, गृह्य एवं धर्मसूत्रों, महाभारत, मनु, याज्ञवल्क्य एवं अन्य ग्रन्थों से सम्बन्धित है। किन्तु संकीर्ण अर्थ में स्मृति एवं धर्मशास्त्र का अर्थ एक ही है। तैत्तिरीय आरण्यक में भी 'स्मृति' शब्द आया है (1/2) गौतम (2/2) तथा वसिष्ठ (1/4) ने स्मृति को धर्म का उपादान माना है। आरम्भ में स्मृति ग्रन्थ कम ही थे। गौतम (11/19) ने मनु को छोड़कर किसी अन्य स्मृतिकार का नाम नहीं लिया है। यद्यपि इन्होंने धर्मशास्त्रों का उल्लेख किया है। बौधायन ने अपने को छोड़कर सात धर्म–शास्त्रकारों के नाम लिये हैं– औपबंधनि, काव्य, काश्यप, गौतम, प्रजापति, मौद्गल्य एवं हारीत वसिष्ठ ने केवल पाँच नाम गिनाये हैं– गौतम, प्रजापति, मनु, यम एवं हारीत। आपस्तम्ब ने दस नाम लिखे हैं, जिनमें एक, कुणिक, पुष्करसादि केवल व्यक्ति नाम हैं। मनु ने अपने को छोड़कर छः नाम लिखे हैं– अत्रि, उतथ्य के पुत्र, भृगु, वसिष्ठ, वैखानस (या विखनस) एवं शौनक। याज्ञवल्क्य ने सर्वप्रथम एक स्थान पर 20 धर्मवक्ताओं के नाम दिये हैं, जिनमें वे स्वयं एवं शंख तथा लिखित दो पृथक् पृथक् व्यक्ति के रूप में सम्मिलित हैं। याज्ञवल्क्य ने बौधायन का नाम छोड़ दिया है। पराशर ने अपने को छोड़कर 19 नाम गिनाये हैं। किन्तु याज्ञवल्क्य एवं पराशर की सूची में कुछ अन्तर है। पराशर ने बृहस्पति, यम एवं व्यास को छोड़ दिया है। किन्तु काश्यप, गार्ग्य एवं प्रचेता के नाम सम्मिलित कर लिये हैं। कुमारिल के तन्त्रवार्तिक में 18 धर्म–संहिताओं के नाम आये हैं। विश्वरूप ने वृद्धयाज्ञवल्क्य के श्लोक को उद्धृत कर याज्ञवल्क्य की सूची में दस नाम जोड़ दिये हैं।

चतुविंशतिमत नामक ग्रन्थ में 24 धर्मशास्त्रकारों के नाम उल्लिखित हैं। इस सूची में याज्ञवल्क्य वाली सूची के दो नाम, यथा कात्यायन एवं लिखित छूट गये हैं, किन्तु छः नाम, यथा गार्ग्य, नारद, बौधायन, वत्स, विश्वामित्र, शंख। अंगिरा ने जिसे स्मृतिचन्द्रिका, हेमाद्रि, सरस्वतीविलास तथा अन्य ग्रन्थों ने उद्धृत किया है, उपस्मृतियों के नाम भी गिनाये हैं। एक अन्य स्मृति का नाम है षट्चिन्मत जिसे मिताक्षरा, अपरार्क तथा अन्य ग्रन्थों ने उल्लिखित किया है। पैठीनसि ने 36 स्मृतियों के नाम गिनाये हैं। अपरार्क के अनुसार भविष्यत्पुराण में 36 स्मृतियों के नाम आये हैं। वीरमित्रोदय में उद्धृत पारिजात ने 18 मुख्य स्मृतियों, 18 उपस्मृतियों तथा 21 अन्य स्मृतिकारों के नाम लिये हैं। विश्वसनीय स्मृतियाँ कई युगों की कृतियाँ हैं। कुछ तो पूर्णतया गद्य में, कुछ मिश्रित अर्थात् गद्य–पद्य में हैं और अधिकांश पद्य में हैं। कुछ अति प्राचीन हैं और ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व प्रणीत हुई थीं, यथा गौतम, आपस्तम्ब, बौधायन के धर्मसूत्र एवं मनुस्मृति। कुछ का प्रणयन ईसा के प्रथम शताब्दी में हुआ, यथा याज्ञवल्क्य, पराशर एवं नारद। उपर्युक्त स्मृतियों के अतिरिक्त अन्य स्मृतियाँ ई. से 1000 ई. के बीच की हैं। सबका काल–निर्णय सरल नहीं है। कुछ तो प्राचीन सूत्रों के छन्दों में संशोधन मात्र हैं, यथा शंख कभी–कभी दो या तीन स्मृतियों एक ही नाम के साथ चलती हैं, यथा शातातप, हारीत आदि। मनुस्मृति के बाद याज्ञवल्क्य की महिमा विशेष रूप से गायी जाती है।

अब आपके ज्ञानार्थ कुछ प्रमुख स्मृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्न रूपेण है–

मनुस्मृति–मनु स्मृति के अनेक व्याख्याकार हो चुके हैं। मनु के विषय में तो यहाँ तक कहा गया है कि "यत् किञ्चन मनुरवदत् तद् भेषणं भेषजतायाः" (ताण्ड. 23/16/17) मनुस्मृति में 12 अध्याय और 2694 श्लोक हैं। मनुस्मृति सरल एवं धाराप्रवाह शैली में है। इसका व्याकरण प्रायः पाणिनी सम्मत है। इसके सिद्धान्त गौतम, बौधायन एवं आपस्तम्ब के धर्मसूत्रों से बहुत कुछ मिलते–जुलते हैं। इसके बहुत से विषय वसिष्ठ एवं विष्णु के धर्म सूत्र में भी पाये जाते हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति–याज्ञवल्क्य स्मृति मनुस्मृति की अपेक्षा सुव्यवस्थित है। इसके अनेक व्याख्याकार हो चुके हैं। यह तीन भागों में विभक्त हैं, और तत्तद् विषयों का उचित प्रतिपादन किया गया है। इसमें पुनरुक्तिदोष प्रायः नहीं है। मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति के विषय अधिकांश समान रहने पर भी याज्ञवल्क्य स्मृति मनु की अपेक्षा संक्षिप्त है, किन्तु इसकी शैली सरल और धाराप्रवाही है। धर्मशास्त्र के इतिहास में काणे लिखते हैं– याज्ञवल्यक्य ने विष्णुधर्मसूत्र की बहुत सी बातें मान ली है। इनकी स्मृति एवं कौटिलीय अर्थशास्त्र में पर्याप्त समानता दिखाई पड़ती है। याज्ञवल्क्य स्मृति के बहुत से श्लोक मनु से सहमति दिखाते हैं। किन्तु याज्ञवल्क्य मनु की बहुत सी बातें नहीं मानते। जैसे– मनु ब्राह्मण को शूद्रकन्या से विवाह करने का आदेश देते हैं (3/13), किन्तु याज्ञवल्क्य नहीं (1/59)। मनु ने नियोग का वर्णन करके उसकी भर्त्सना की है (9/68) किन्तु याज्ञवल्क्य ने ऐसा नहीं किया (1/69)। मनु ने 18 व्यवहारपदों के नाम लिये हैं, किन्तु याज्ञवल्क्य ने ऐसा न करके केवल व्यवहारपद की परिभाषा की है और एक अन्य प्रकारण में व्यवहार पर विशिष्ट श्लोक जोड़ दिये हैं। मनु, पुत्रहीन पुरुष की विधवा पत्नी के दाय भाग पर मौन से हैं, किन्तु इस विषय में याज्ञवल्क्य बिलकुल स्पष्ट है। उन्होंने विधवा को सर्वोपरि स्थान पर रखा है। मनु ने जुए की भर्त्सना की है, किन्तु याज्ञवल्क्य ने उसे राज्य नियंत्रण में रखकर एक उपादान बना

डाला है। (2/202)

याज्ञवल्क्यस्मृति पर कई टीकायें है, जिनमें विश्वरूप, विज्ञानेश्वर, अपरार्क एवं शूलपाणि अधिक प्रसिद्ध हैं। भारत में विज्ञानेश्वर विरचित मिताक्षरा पर आधारित व्यवहारों का अधिक प्रचलन है, इस कारण याज्ञवल्क्य को अधिक गौरव प्राप्त है।

पराशर स्मृति– पराशर स्मृति में 12 अध्याय है। इसमें केवल आचार और प्रायश्चित पर चर्चा हुई है। इसके टीकाकार माधव ने अपनी ओर से व्यवहार सम्बन्धी विवेचन जोड़ दिया है। पराशर नाम बहुत प्राचीन है। तैत्तिरीय आरण्यक और बृहदारण्यक में क्रम से व्यास पाराशर एवं पाराशर्य नाम आए हैं। कुछ अन्य स्मृतियों के नाम इस प्रकार है–

1. नारद स्मृति
2. बृहस्पति
3. कात्यायन

6.3 याज्ञवल्क्य स्मृति

याज्ञवल्क्य स्मृति के रचनाकार महर्षि याज्ञवल्क्य थे। इनके बारे में महाभारत के शान्तिपर्व के 312वें अध्याय में, शतपथब्राह्मण में तथा भागवत में यह बतलाया गया है कि याज्ञवल्क्य वैशम्पायन के शिष्य थे। वैशम्पायन से उन्होंने विद्या ग्रहण, विशेषतः यजुर्वेद का अध्ययन किया था। परन्तु एक समय गुरु–शिष्य में मतभेद के कारण याज्ञवल्क्य ने अपने गुरु की विद्या को वान्त कर दिया और पुनः भगवान सूर्य की आराधना कर मध्याह्नकाल में सूर्य से यजुर्वेद का अध्ययन किया। इसी कारण इस वेद को 'शुक्ल यजुजर्वेद' तथा मध्य दिन में सूर्य से अधिगत होने से 'माध्यन्दिन–संहिता' भी कहा जाता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में विदेह जनक के गुरु के रूप में भी याज्ञवल्क्य का वर्णन विस्तृत रूप में पाया जाता है। याज्ञवल्क्यस्मृति का आरम्भ मुनियों के प्रश्न से होता है। योगीश्वर याज्ञवल्क्य मिथिला को सुशोभित कर रहे थे। मुनियों ने उनकी पूजा की और कहा कि आप वर्णों, आश्रमों और दूसरे (अनुलोम, प्रतिलोम, संकर जातियों) का धर्म हमें पूरी तरह से समझाइये।

योगीश्वरं याज्ञवल्क्यं संपूज्य मुनयोऽब्रुवन्।
वर्णाश्रमेतराणां नो ब्रूहि धर्मानशेषतः।। (याज्ञवल्क्य स्मृति 1/1)

और तब याज्ञवल्क्य उस देश में किये जाने वाले धर्म का प्रतिपादन करते हैं, जिस देश में काले मृग स्वच्छन्द विचरण करते हैं।

यस्मिन् देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन्धर्मान्निबोधत।।(ज्ञायवल्क्य स्मृति 1/2)

इस उपक्रम के बाद याज्ञवल्क्यस्मृति आरम्भ होती है, और बीच–बीच में मुनिगण शंका करते हैं जिनका समाधान याज्ञवल्क्य करते चलते हैं। यह स्मृति लगभग तीन अध्यायों में विभक्त है।

- आचाराध्याय
- व्यवहाराध्याय

- प्रायश्चिताध्याय
- 368 पद्यों में निबद्ध आचाराध्याय में कुछ 13 प्रकरण है। जो निम्नलिखित है–
- उपोदघात प्रकरण
- ब्रह्मचारी प्रकरण
- विवाह प्रकरण
- जाति–वर्ण–विवेक प्रकरण
- गृहस्थ धर्म प्रकरण
- स्नानतक व्रत प्रकरण
- भक्ष्याऽभक्ष्य प्रकरण
- द्रव्य शुद्धिप्रकरण
- दान–धर्म–प्रकरण
- श्राद्ध प्रकरण
- गणपति कल्प प्रकरण
- ग्रह शान्ति प्रकरण
- राज धर्म प्रकरण

307 पद्यों में निबद्ध व्यवहाराध्याय में कुल 25 प्रकरण है। इस इकाई का मुख्य विषय वस्तु यही अध्याय है, अतः इस अध्याय के प्रकरणों का संक्षिप्त वर्णन विवेचन अपेक्षित है। इनका वर्णन 6.4 इकाई में स्वतंत्र रूप से आगे किया जाएगा।

334 पद्यों में निबद्ध प्रायश्चित अध्याय में कुल पाँच प्रकरण है, जो निम्निलिखित है–

- अशौच प्रकरण
- आपद्धर्म प्रकरण
- वानप्रस्थ धर्म प्रकरण
- यतिधर्म प्रकरण
- प्रायश्चित प्रकरण

6.3.4 याज्ञवल्क्य स्मृति के व्याख्याकार

याज्ञवल्क्य स्मृति की सर्वाधिक प्राचीन व्याख्या विश्वरूप की प्राप्त होती है। वहीं विज्ञानेश्वर रचित मिताक्षरा व्याख्या सर्वाधिक प्रसिद्ध है। याज्ञवल्क्य स्मृति के कुछ महत्त्वपूर्ण व्याख्याकारों का परिचय कुछ इस प्रकार है–

याज्ञवल्क्य स्मृति के व्याख्याकार–

विश्वरूप (850 ई.)– ये याज्ञवल्क्य स्मृति की सर्वप्राचीन उपलब्ध व्याख्या 'बालक्रीडा' के रचयिता है। मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर (1100 ई.) ने इनका आदर के साथ स्मरण किया है। यह व्याख्या त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित हुई थी। यह बहुत ही विस्तृत व्याख्या है।

मैथिल पण्डित श्रीकर मिश्र (1050 ई.) के 'श्रीकरनिबन्ध' ग्रन्थ के समान 'विश्वरूपनिबन्ध' के भी उद्धरण चण्डेश्वर, वाचस्पति मिश्र आदि देते है। जो पद्यबद्ध हैं, तदनुसार विश्वरूपनिबन्ध पद्यबद्ध धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ था। श्री पुरुषोत्तमदेव (1175 ई.) की भाषावृत्ति 'पञ्जिका' व्याख्या लिखने वाले मैथिल विश्वरूप उपाध्याय (1250 ई.) उपर्युक्त विश्वरूप से भिन्न थे। इन में विश्वरूपनिबन्ध के रचयिता कौन विश्वरूप थे, यह अनुसन्धान सापेक्ष है।

विज्ञानेश्वर (1100 ई.)– इनकी ऋतुमिताक्षरा व्याख्या (जिसे संक्षेप में 'मिताक्षरा' कहा जाता है) नामानुरूप स्पष्ट सरल एवं सारगर्भित है। विषय को स्पष्ट करने के लिए इस में विविध स्मृति, पुराण आदि के उद्धरण दिये गये हैं, जिससे विषय का सांगोपांग निरूपण होने से इसको उपादेयता अधिक है। विज्ञानेश्वर ने अपना परिचय दिया है, तदनुसार ये भारद्वाज गोत्रीय भट्ट पद्मनाभ के पुत्र एवं उत्तमात्म यति के शिष्य थे। स्वयं परमहंस परिव्राजकाचार्य थे। ये चालुक्य वंशीय विक्रमादित्य (1006 ई.) के आश्रित थे, जिनके राजकवि बिल्हण ने विक्रमांकदेवचरित महाकाव्य की रचना की थी। इन्हीं के आश्रय में आचार्य वरमथि ने 'लिङ्गविशेषविधि' नामक कोशग्रन्थ की रचना की थी तथा 'कौमुदी' लिखी थी।

अपरार्क (1150 ई.) इनकी व्याख्या अपरार्क निबन्ध नाम से जानी जाती है जो आनन्दश्रम ग्रन्थावली, पूना से प्रकाशित है। यह अतिविस्तृत व्याख्या है।

शूलपाणि (1305 ई.)– इनकी व्याख्या का नाम दीपकलिका है। इनकी व्याख्या अत्यन्त संक्षिप्त और प्रामाणिक है। इन्होंने विश्वरूप एवं विज्ञानेश्वर का उल्लेख किया है। मित्र मिश्र ने इनके मतों का उल्लेख किया है।

मित्र मिश्र (1750 ई.)– इनकी व्याख्या का नाम वीरमित्रोदय है। इन्होंने अपने आनन्दवृन्दावनचम्पू में रचना काल शाके 1660 का उल्लेख किया है जो 1778 ई. होता है। यह व्याख्या बहुत ही विस्तृत है। यथार्थतः मित्र मिश्र के आदेश से मैथिल पण्डित सदानन्द ने ही वीरमित्रोदय की रचना की थी, जिसका उल्लेख इसी ग्रन्थ में पाया जाता है।

6.4 व्यवहाराध्याय के विषयों का संक्षिप्त परिचय

व्यवहार पद का सामान्य अर्थ वि तथा अव उपसर्ग के हृ धातु के योग से अनेक प्रकार के संदेह हरण को व्यक्त करता है। मिताक्षरा टीकाकार आचार्य विज्ञानेश्वर व्यवहार पद का अर्थ करते हुए लिखते हैं कि–

"अन्यविरोधेन स्वात्म संबंधितया कथनं व्यवहारः।"
(याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक 1 की मिताक्षरा टीका)

कहने का तात्पर्य यह है कि किसी भी वस्तु के विषय में दूसरे के पक्ष का विरोध करते हुए आत्मसंबंधी रूप से प्रतिपादन करना ही व्यवहार है। तात्पर्य यह है कि किसी व्यक्ति ने किसी द्रव्य के विषय में स्वकीयत्व का प्रतिपादन किया। कोई व्यक्ति उसी द्रव्य के संबंध में उसके पक्ष को खण्डित करते हुए स्वकीयत्व का प्रतिपादन करता है। एकद्रव्यविषयक दो पक्ष उपस्थिति होने से परस्पर विवाद उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इस विवाद के निराकरण को व्यवहार शब्द से कहा गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में

आचार्य ने व्यवहार अर्थात् शासन व्यवस्था को 25 प्रकरणों में विभिन्न विषयों को वर्णित किया है। वस्तुतः यह न्याय व्यवस्था को प्रस्तुत करता है। व्यवहाराध्याय के 25 प्रकरणों के विषय वस्तु का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं–

1. साधारण व्यवहार मातृका प्रकरण

इस प्रकरण का प्रारंभ राजा को निर्देशित करते हुए हुआ है।

"व्यवहारान्नृपः पश्येद्विद्वद्भिर्ब्राह्मणैः सह।
धर्मशास्त्रानुसारेण क्रोधलोभविवर्जितः।।

(याज्ञवल्क्य स्मृति, व्यवहार अध्याय, श्लोक 1)

क्रोध और लोभ से रहित राजा विद्वान ब्राह्मणों के साथ धर्मशास्त्र के अनुसार प्रजा के विवादों को सुनकर उसका समाधान करें। राजा को अपने अतिरिक्त विवाद निर्णय करने हेतु अन्य लोगों को भी नियुक्त करना चाहिए। इस संबंध में याज्ञवल्क्य का कहना है कि–

"श्रुताध्ययनसंपन्ना धर्मज्ञाः सत्यवादिनः।
राजा सभासदः कार्या रिपौ मित्रे च ये समाः।।"

(याज्ञवल्क्य स्मृति, व्यवहार अध्याय, श्लोक 2)

जो व्यक्ति मीमांसादिशास्त्रों का श्रवण तथा वेदों का अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त कर चुका हो, धर्मशास्त्र का अध्ययन किया हो, स्वभावतः सत्य बोलने वाला हो, शत्रु तथा मित्र के प्रति समानभाव अर्थात् रागद्वेषादि से रहित हो, उसी को विवाद–निर्णय के लिये सम्यक् रूप से राजा नियुक्त करे।

इस प्रकरण में विवाद निर्णय करने वाले अधिकारी के अतिरिक्त, वादी–प्रतिवादी के द्वारा उल्लेख विषय, समासद के द्वारा उचित व्यवहार न करने पर उसके लिए दण्ड व्यवस्था का वर्णन किया गया है। प्रकरण की समाप्ति चतुष्पाद व्यवहार से है।

"तत्सिद्धो सिद्धिमाप्नोति विपरीतमतोऽन्यथा।
चतुष्पाद्व्यवहारोऽयं विवादेष्पदर्शितः।।"

(याज्ञवल्क्यस्मृति व्यवहाराध्याय श्लोक 8)

कहने का तात्पर्य यह है कि लिखित, भुक्ति तथा साक्षी आदि मानुष प्रमाण को यथावत् उपस्थापित करने पर ही जयलक्षण सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। साधन के असिद्ध होने पर साध्य भी असिद्ध हो जाता है अर्थात् पराजय की प्राप्ति होती है। भाषा, उत्तर, क्रिया तथा सिद्धि नाम के चार अवयवों से युक्त व्यवहार बताया गया है और इनका ऋणादानादि अठारह प्रकार के विवाद के विवेचन के प्रसङ्ग में सुस्पष्ट वर्णन किया है। 'प्रत्यर्थिनोऽअग्रतो लेख्यम्' अर्थात् प्रत्यक्षी के समक्ष वाद का लिखना भाषापाद कहलाता है। यह पहला अंश है। 'श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यम्' अर्थात् भाषापाद को सुन लेने के बाद प्रत्यर्थी जो उत्तर लिखता है, वही उत्तरपाद कहलाता है। यह व्यवहार का दूसरा अंश है। उसके बाद 'अर्थी

लेखयेत्सद्यः' अर्थात् अर्थी (वादी) अपने साध्य की सिद्धि के लिये साधनों का उपन्यास करता है। वह क्रियापाद कहलाता है। यह व्यवहार का तीसरा अंश है। 'तत्सिद्धाँ सिद्धिमाप्नोति' अर्थात् साधनों की सिद्धि से ही जयलक्षण साध्यसिद्धि को प्राप्त करता है। यह व्यवहार का चौथा सिद्धिपाद है। इसी को चतुष्पाद् व्यवहार कहते हैं। कहा भी है– जब मनुष्यों के परस्पर स्वार्थ सिद्धि में सन्देह या विवाद उत्पन्न हो जाता है, तब शास्त्रीय वचनों तथा न्यायों (युक्तियों) के द्वारा व्यवस्था प्रदान करना ही व्यवहार कहलाता है। यही क्रमशः भाषा, उत्तर, क्रिया तथा सिद्धि के द्वारा आक्षिप्त चतुष्पाद् व्यवहार कहलाता है। यद्यपि पाद चरण का वाचक है, वह मुख्यवृत्ति से व्यवहार में रह नहीं सकता। अतः पाद शब्द का अंश अर्थ किया है। ऋणादानादि विवादों के विवेचन के प्रसङ्ग में इनका स्पष्टीकरण किया गया है। जिस अभियोग में सम्प्रतिपत्त्युत्तर (सत्योत्तर) दिया गया हो, वहाँ साधननिर्देश की आवश्यकता नहीं होती तथा भाषार्थरूप साध्य भी नहीं होता। अतः साध्यसिद्धि लक्षण पाद (अंश) भी नहीं होता। अतः द्विपात्त्व (दो पादों (अंशो) सं युक्त) ही व्यवहार माना जाता है। उत्तर कथन के पश्चात् सभ्य यह विचार करते हैं कि अर्थों और प्रत्यक्षों में किसकी क्रिया होगी। इस प्रकार के विचार को योगीश्वर ने व्यवहार के पाद (अंश) रूप से प्रतिपादन नहीं किया है तथा व्यवहर्त्ता के साथ इसका कोई सम्बन्ध भी नहीं है। अतः परामर्श–लक्षण प्रत्याकलित को व्यवहार के पाद रूप से कल्पना करना उचित नहीं है। 'कस्य क्रिया स्यात्' इस प्रकार का परामर्श ही प्रत्याकलित शब्द से कहा जाता है। प्रत्याकलित शब्द का अर्थ है– पौनः पुन्येन विचार करना। संशय की निवृत्ति के लिये पुनः पुनः प्रत्याकलन (विचार) ही प्रत्याकलित शब्द से कहा गया है। विचार प्रत्याकलन है और विचार का विषय प्रत्याकलित है। इस प्रकार चतुष्पाद् व्यवहार का विचार किया गया है।

2. असाधारण व्यवहार मातृका प्रकरण

इस प्रकरण में अभियुक्त का लक्षण, दुष्ट का लक्षण, प्रमाण का स्वरूप एवं भेद दंड के प्रकार गुरु–शिष्य, पिता–पुत्र, स्त्री–पति, स्वामी–दास, गोप–शाण्डिक आदि का एक दूसरे के प्रति व्यवहार, निधि प्राप्ति, चोर के द्वारा अपहृत धन आदि के बारे में वर्णन किया गया है। कुछ विषयों का यहाँ दिङ्मात्र वर्णन किया जा रहा है। अभियुक्त को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि अभियोग का जब तक निर्णय न हो जाए किसी को अभियुक्त (दोषी) नहीं कह सकते–

'अभियोगमनिस्तीर्य नैनं प्रत्यभियोजयेत्।'

(याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक 9)

न्याय हेतु लिखित, भुक्ति, साक्षी और दिव्य चार प्रकार के प्रमाण होते हैं।

"प्रमाणं लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्तितम्।
एषामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते।।"

(याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक 22)

स्मृति ग्रंथ नियम ग्रंथ है। इस प्रकरण में यह भी विचार किया गया है कि किसी विषय पर दो स्मृतियों के निर्णय में विरोध होने पर क्या उचित निर्णय होगा।

याज्ञवल्क्यकार का कहना है कि–

'स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान् व्यवहारतः'

(याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक 21)

दो स्मृतियों अर्थात् स्मृतिवाक्यों का विषयभेद होने के कारण परस्पर विरोध होने पर उत्सर्गापवाद (सामान्यविशेष) रूप न्याय प्रबल होता है अर्थात् वही निर्णायक होता है और लोकव्यवहार से उस न्याय का ज्ञान होता है।

3. ऋणादान प्रकरण

यह प्रकरण पूर्ण रूप से ऋण के आदान से संबंधित है। ऋण पर लगने वाले ब्याज का भी निर्धारण किया गया है। इस प्रकरण की सबसे बड़ी विशेषता संयुक्त परिवार या एकल परिवार के मुखिया द्वारा ऋण लेने के संबंध में निर्णय है।

अविभक्त परिवार अर्थात संयुक्त परिवार के मुखिया के द्वारा कुटुम्ब हित के लिए लिया गया ऋण उसके विदेश गमन अथवा मृत्यु हो जाने पर उसे परिवार के द्वारा देय होगा। वहीं एकल परिवार की स्थिति में उसका पुत्र उस ऋण को चुकाएगा। पुत्र के अक्षम होने की स्थिति में पौत्र को ऋण चुकाने की बात यहाँ की गई है।

"अविभक्तैः कुटुम्बार्थे यदृणं तु कृतं भवेत्।
ददयुस्तद्रिक्थिनः प्रेते प्रोषिते वा कुटुम्बिनि।।"

"पितरि प्रोषिते प्रेते व्यसनाभिप्लुतेऽपि वा।
पुत्रपौत्रेर्ऋणं देय निह्नवे साक्षिभावितम्।।"

(याज्ञवल्क्य स्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक 45–50)

4. उपनिधि प्रकरण

किसी के पास किसी वस्तु को रखना उपनिधि प्रकरण है। इस प्रकरण में इस पर विचार किया गया है। याज्ञवल्क्य का कहना है कि सीलबंद उपनिधि को समय पर वापस कर देना चाहिए। यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि चोरी आदि होने पर उपनिधि वापस नहीं लौटाने का निर्देश है। वही उपनिधि का संरक्षक यदि उसका भोग करता है तो वह दण्डनीय है।

5. साक्षिप्रकरण

इस प्रकरण में साक्षी अर्थात गवाह के बारे में विस्तार से कहा गया है। कौन साक्षी न्याय में मान्य होगा और कम से कम कितने साक्षी होने चाहिए इसका भी वर्णन किया गया है। यथा–

तपस्विनों दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः।
धर्मप्रधाना ऋजवः पुत्रवन्तो धनान्विताः।।

त्रसवराः साक्षिणो ज्ञेयाः श्रौतस्मार्तक्रियापराः।
यथाजाति यथावर्णं सर्वे सर्वेषु वा स्मृताः।।

(याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक 68–69)

याज्ञवल्क्य ने कौन साक्षी नहीं हो सकता है उसका भी निर्देश किया है। कहने का तात्पर्य है कि किन लोगों की गवाही मान्य नहीं होगी।

"स्त्रीबालवृद्धकितवमत्तैन्मत्तभिशस्तकाः।
रङ्गावतारिपाखण्डिकूटकृद्विकलेन्द्रियाः।।

पतितापार्थसंबन्धिसहायरिपुतस्कराः।
साहसी दृष्टदोषश्च निर्धूताद्यास्त्वसाक्षिणः।।"

(याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक 70–71)

स्त्री, बालक, वृद्ध, जुआ खेलने वाला, मद्यपानादि से विक्षिप्त चित्त, ग्रहाविष्ट, ब्रह्म हत्यादि पापों से युक्त, चारण, पाखण्डी, कपटपूर्वक व्यवहार करने वाला, श्रोत्रादि इन्द्रियों से रहित, पतित, मित्रादि, विवादग्रस्त, अर्थसम्बन्धी, अनुचर, शत्रु, चोर, साहसी, पूर्वदृष्टि मिथ्यादिवचनशील तथा अपने बन्धु आदि से परित्यक्त साक्षी नहीं हो सकते हैं।

6. लेख्य प्रकरण

इस प्रकरण में लिखित प्रमाण के संबंध में विचार किया गया है। लेख्य दो प्रकार का होता है– (क) शासन कृत (ख) जनपद कृत। इस प्रकरण में लेख्य के आवश्यक तत्व, लेखक एवं साक्षियों के हस्ताक्षर, लेख्य नष्ट होने पर पुनः लेख्य, लेख्य संदेह निवारण, बलात् लेख्य (जबरदस्ती लिखवाना) आदि विषयों पर विचार किया गया है। विस्तार से ज्ञान के लिए आप व्यवहार अध्याय के श्लोक 84–94 का अध्ययन कर सकते हैं।

7. दिव्य प्रकारण

व्यवहाराध्याय का श्लोक 95 से 113 तक दिव्य प्रकरण है। यहाँ दिव्य प्रमाण का विस्तार से वर्णन किया गया है। तुला, विष, अग्नि, जल, कोश, तण्डुल, तप्तमाष, धर्माधर्म आदि दिव्य विधियों को वर्णित किया गया है।

8. दायविभाग प्रकरण

यह प्रकरण वस्तुतः संपत्ति के उत्तराधिकारी को समर्पित है। यहाँ पितामह के धन को पौत्रों में विभाग, पिता के धन में पुत्रों का अंश, कन्या का अंश, पत्नी के अंश का विचार किया गया है। दाय के अनाधिकार का भी यहाँ वर्णन किया गया है।

9. सीमाविवाद प्रकरण

यह प्रकरण भूमि, क्षेत्र आदि से संबंधित है। भूमि विवाद, दो व्यक्तियों के बीच हो सकता है। यह दो गाँवों के सीमा निर्धारण का भी हो सकता है। याज्ञवल्क्य ने राजा को निर्देशित किया है कि ऐसे विवाद की स्थिति में वह सामंत, वृद्ध,

वनेचरादि आदि की सहायता से सीमा विवाद का समाधान करें। यहाँ कृषि कार्य हेतु किसान को समयावधि के लिए दिए गए जमीन विवाद के भी समाधान की बात की गई है।

10. स्वामिपालविवाद प्रकरण

इस प्रकरण का मुख्य वर्ण्य विषय पालित पशुओं के द्वारा किसी अन्य के फसल को चर जाने अथवा नष्ट कर देने पर दण्ड विधान है। यहाँ गोचर भूमि का भी निर्देश किया गया है।

11. अस्वामीविक्रय प्रकरण

नाम से से ही स्पष्ट है कि जो किसी वस्तु का स्वामी नहीं है और वस्तु का विक्रय करता हुआ पकड़ा जाता है। तो क्या करना चाहिए यही इस प्रकरण का विषय वस्तु है। यहाँ दण्ड विधान की बात तो की गई है, परंतु सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि क्रेता को भी अपराधी मानते हुए उसे भी दण्डित करने का विधान है।

12. दत्ताप्रदानिक प्रकरण

यह प्रकरण दान से संबंधित है। याज्ञवल्क्य ने यहाँ स्पष्ट किया है कि परिवार के सहमति होने पर ही दान देना चाहिए अन्यथा विवाद हो सकता है। एक बार दान में दिए गए वस्तु धन आदि को पुनः वापस नहीं लेना चाहिए।

13. क्रीतानुशय प्रकरण

इस प्रकरण में खरीदे गए वस्तुओं पर विचार किया गया है। यहाँ धातुओं की अग्नि में शुद्धि प्रसंग को भी वर्णित किया गया है। यथा

"अग्नौ सुवर्णमक्षीणं रजते द्विपलं शते।
अष्टौ त्रपुणि सीसे च तामे पञ्च दशायसि।।"

(याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक 178)

यह तथ्य विज्ञान के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है।

14. अभ्युपेत्याशुश्रूषा प्रकरण

इस प्रकरण में दास, सेवक, नौकर, अन्तेवासी (शिष्य) के संबंध में विचार है।

15. संविद्व्यतिक्रम प्रकरण

इस प्रकरण में धर्म रक्षार्थ ब्राह्मणों को उचित संसाधन के साथ एक निश्चित स्थान पर बसाने का निर्देश है। साथ ही सामूहिक कार्य चिंतकों के लक्षण और उनके कर्तव्य का भी वर्णन यहाँ प्राप्त होता है।

16. वेतनादान प्रकरण

इस प्रकरण में कार्य करने वालों के वेतन का वर्णन है। यहाँ ध्यान देने योग्य तथ्य है कि वेतन लेकर कार्य न करना या अधूरा छोड़ने पर तथा बिना वेतन के

कार्य करने की स्वीकृति देकर कार्य न करने पर दंड विधान समीचीन है।

17. धूतसमाह्व प्रकरण

तात्कालिक समय में धूत क्रीड़ा राज्य संरक्षित था। इस प्रकरण में धूत क्रीड़ा करने वाले अधिकारियों के द्वारा जीते हुए धन में से हिस्सा लेने का निर्देश है। धूत से संबंधित सभी विवादों के संबंध में भी नियम यहाँ वर्णित है।

18. वाक्यपारूष्य प्रकरण

इस प्रकरण में अपशब्द (गाली), धमकी, लड़ाई–झगड़ा आदि विवादों का वर्णन तथा दोष सिद्ध होने पर दंड का वर्णन है।

19. दण्ड पारुष्य प्रकरण

इस प्रकरण में मनुष्य, पशु आदि को प्रताड़ित करने पर दोष सिद्ध होने पर दण्ड विधान वर्णित है। वृक्ष को काटने पर भी दंड की व्यवस्था इस प्रकरण में प्राप्त होती है। आज भी इस दण्ड व्यवस्था का पालन भारत में हो रहा है।

20. साहस प्रकरण

दूसरे के वस्तु को बलपूर्वक ग्रहण कर लेना साहस कहलाता है–

"सामान्यद्रव्यप्रसभहरणात्साहसं स्मृतम्।"

(याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक 230)

इस प्रकरण में विभिन्न प्रकार के साहस का वर्णन कर उसके लिए उचित दण्ड का वर्णन किया गया है।

21. विक्रीय असंप्रदान प्रकरण

इस प्रकरण में विक्रेता एवं क्रेता के मध्य उत्पन्न विवाद पर दण्ड व्यवस्था वर्णित है।

22. सम्भूयसमुत्थान प्रकरण

इस प्रकरण में व्यापार से संबंधित नियम वर्णित हैं। यथा–

"समवायेन विणजां लाभार्थं कर्म कुर्वताम्।
लाभालाभौ यथाद्रव्यं यथा वा संविदा कृतौ।।"

(याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक 261)

लाभ की इच्छा से परस्पर मिलकर कार्य को सम्पन्न करने वाले बनियों का व्यय किये गये धन के अनुसार अथवा कार्य करने से पहले लिखित सम्विदा (शपथपत्र) के अनुसार लाभ तथा हानि का अधिकार समझना चाहिए।

23. स्तेय प्रकरण

स्तेय का अर्थ चोरी होता है। इस प्रकरण में चोर को पकड़ने तथा उसके द्वारा

चुराए गए धन आदि पर अलग–अलग दण्ड विधान वर्णित है। चोर की सहायता करने वालों को भी दण्डित करने का विधान है।

इस प्रकरण में स्त्रियों द्वारा स्वयं का अथवा दूसरे के गर्भ को नष्ट करने पर (गर्भपात) मृत्यु दंड का विधान है।

"विप्रदुष्टां स्त्रियं चैव पुरुषघ्नीमगर्भिणीम्।
सेतुभेदकरीं चाप्सु शिलां बध्वा प्रवेशयेत्।।"

(याज्ञवल्क्य स्मृति, व्यवहाराध्याय 278)

24. स्त्री संग्रहण प्रकरण

यह प्रकरण स्त्री–पुरुष संबंध से संबंधित है। स्त्रियों के व्यभिचार को दण्डनीय बताया गया है।

25. प्रकीर्णक प्रकरण

इस प्रकरण में उन विषयों को समाहित किया गया है जो उपयुक्त 24 प्रकरणों में समावेशित नहीं हो पाए थे। यहाँ जिन कृतियों के लिए दंड का विधान किया गया है वह इस प्रकार है–

क) द्विज को अभक्ष्य वस्तु से धर्मभ्रष्ट करने पर दण्ड।

ख) मिश्र सोना एवं निषिद्ध मांस बेचने पर दण्ड।

ग) राजा की निंदा करने पर दण्ड।

घ) पराजय न स्वीकार करने वाले को दण्ड आदि।

6.5 सारांश

संपूर्ण इकाई के अध्ययन से स्पष्ट है कि याज्ञवल्क्य ने व्यवहाराध्याय में आधुनिक Civil Law and Criminal Law को वर्णित किया है। विवाद होने की स्थिति में वादी और प्रतिवादी को प्रमाण प्रस्तुत करने होते थे। यहाँ किसकी गवाही मान्य होगी और किसकी अमान्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। सीमा विवाद प्राचीन काल से आज तक अनुभूत है। ऋण पर व्याज निर्धारित करना अत्यंत सामाजोपयोगी नियम था। दाय विभाग में वर्णित नियम भारतीय संविधान में भी ग्रहण किए गए हैं। व्यापारियों हेतु बनाए नियम Business Law से संबंधित है। सेवक के कर्त्तव्य और उनके द्वारा उसका पालन न करने पर दंड विधान भी महत्त्वपूर्ण है। दान देने के नियम आज भी प्रासंगिक हैं। लड़ाई–झगड़ा, हिंसा, चोरी आदि का दंड विधान सामाजिक व्यवस्था हेतु अनुकरणीय हैं। गर्भपात पर मृत्यु दंड चिंतनीय है, वहीं वृक्ष काटने पर कठोर दंड प्रशंसनीय है। छात्रों इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निःसंदेह इस तथ्य से अवगत हो गए होंगे कि धर्मसूत्र और स्मृति ग्रंथ लगभग समान ही है। दोनों का उद्देश्य समाज में शासन व्यवस्था को बनाए रखना था जिससे समाज का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विकास हो सके।

6.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक पद में दीजिए।
   क) याज्ञवल्क्य स्मृति के रचयिता कौन हैं?
   ख) याज्ञवल्क्य स्मृति में कितने अध्याय हैं?
   ग) याज्ञवल्क्य स्मृति के व्यवहार अध्याय में कितने प्रकरण हैं?
   घ) अथातो धर्म जिज्ञासा किसी उक्ति है?
   ङ) प्रायश्चिताध्याय में कितने प्रकरण है?
2. निम्नलिखि विषयों पर टिप्पणी लिखें।
   क) धर्मसूत्र
   ख) आचाराध्याय
   ग) व्यवहाराध्याय
   घ) प्रायश्चिताध्याय
   ङ) ऋणादान प्रकरण

6.7 अभ्यास हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. क) याज्ञवल्क्य स्मृति
   ख) तीन
   ग) 25
   घ) गौतम
   ङ) पाँच
2. विद्यार्थी अध्ययन सामग्री की सहायता से स्वयं करें।

6.8 कुछ उपयोगी पुस्तके

- धर्मशास्त्र का इतिहास, डॉ. पाण्डुरंङ्ग वामन काणे, अनुवादक अर्जुन चौबे, हिंदी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, 1990
- धर्म सिंधु, काशीनाथ उपाध्याय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1968
- याज्ञवल्क्य स्मृतिः, व्याख्याकार डॉ. उपमेशचंद्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत, संस्थान, वाराणसी, 1994
- याज्ञवल्क्य स्मृति, सम्पादक डॉ. शशिनाथ झा, भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, दिल्ली, 2021
- याज्ञवल्क्य स्मृति– व्याख्याकार डॉ. कमलनयन शर्मा, जगदीश संस्कृति पुस्तकालय, जयपुर, 2018
- संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. पुष्पा गुप्ता, ईस्टर्न, बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1994
- संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंङ्कर शर्मा, ऋषि, चौखम्बा, भारतीय अकादमी, वाराणसी, 2017।